IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मिथिलांचल की लोकसंस्कृति का स्वरूप

रंकज कुमार महतो
शोधार्थी भूगोल विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा।

मिथिलांचल के सांस्कृतिक विकासधारा की सभी शाखाओं तथा उपशाखाओं में यहाँ का लोकजीवन जो सभी में समाकर अपनी पहचान को नहीं खोता, यह अलग से ही झलकता रहता है। लोकसंगीत लोकगाथा, लोककाव्य, लोकोत्सव और ग्रामीण मेलों में मिथिला स्पष्ट रूप से गुंजती है। यहाँ का आचार और आचरण गीत–संगीत, वेश–भूषा, हास–परिहास आदि विभिन्न स्थलों पर मैथिल पहचान इतनी तेजी से होती है कि किसी भी जनगोष्ठी में मैथिलों की पहचान अलग से हो जाती है। मछली, भात, दही, चूड़ा व्यंजन, वीमन पटुआ, तिलकोर, तिलौरी, धान एवं आमों का रूप गुण के अनुसार इसका नामकरण, विवाह या मंडल यज्ञोपवीत के पात्र एवं ताल भरवाना आदि मैथिल संस्कृति के सहज स्वाभाविक उपकरणों के रूप में देखे बिना बात आगे नहीं बढ़ती। यहाँ के गोसाउनिगीत, शिव पार्वती से सम्बन्धित नचारी, लोरिक एवं राजा सलहेस की लोकगाथाएँ, ढ़ोल, मृदंग, शिव पार्वती से सम्बन्धित नचारी, लोरिक एवं राजा सलहेस की लोकगाथाएँ, ढ़ोल, मृदंग, झाल, मजीरा आदि का वादन, होली, चैता, मधुश्रावणी, कोजागरा वट सावित्री पुरहर, सामा का पौती जट–जाटिन सामा–चकेवा, चानन–ठोप, मछली का मुड़ा या जमीरी नींबु का रस केले के पत्ते और ऐसे ही कितने उपकरण और तत्व मिथिला की संस्कृति को व्याख्यायित करने में हमें मदद करती है। यहाँ संस्कृति की

पहली और अंतिम शर्त सुरूचि और सुन्दर चेतना है। संस्कृति का प्रत्येक तत्व यहाँ सौन्दर्यबोध को उद्दीपित करता है।

इस लोक संस्कृति में दो शब्द लोक और संस्कृति है, जिसमें लोक शब्द का अर्थ प्राणी, जन, मनुष्य, प्रदेश, दिशा, यश, कीर्ति निवास स्थान तथा संसार आदि बताया गया है।[1] लोक का एक अन्य अर्थ देखना, नजर डालना, प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना, निगाह डालना आदि रहा है।[2] एक विचारक के अनुसार लोक भू भुवः स्व. महाजन, तप और सत्य ये सात तत्व है।[3]

हिन्दी साहित्य कोष भाग–1 पारिभाषिक शब्दावली के अनुसार लोक का एक अर्थ जन सामान्य है, जिसका हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का वाचक लोक शब्द साहित्य का विशेषण है। हिन्दी शब्द कल्पद्रुम के अनुसार लोक, लोग, मानव, यश, कीर्ति, सृष्टि के विभाग आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हलायुध कोष के अनुसार लोक को मनुष्य, प्रजा, समूह, भुवन आदि के रूप में जाना जाता है। पाश्चात्य शब्दकोष में लोक का समानार्थक शब्द 'फोक' है। अंग्रेजी के फोक शब्द का प्रयोग अशिक्षित अर्द्धशिक्षित असभ्य तथा अर्द्धसभ्य वर्ग के लिए किया जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के लोक दर्शन धातु में धञ प्रत्यय लगाने से बतायी गई है।[4]

आचार्य सुश्रुत के अनुसार लोक स्थावर और जंगम ये दो तरह का होता है।[5] लोकशब्द का शाब्दिक अर्थ देखनेवाला होता है, अतः वह समस्त जन–समुदाय जो इस कार्य को करता है, लोक कहलाता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोकशब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं बल्कि नगरों और गाँवों में फैली कई समस्त जनता है, जिसके व्यावसायिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा की अधिक सरल और कृत्रिम जीवन के अभ्यरत होते हैं। परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ है आवश्यक होती है, उसे उत्पन्न करते हैं, एक चिन्तक के अनुसार आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में

निवास करने वाली तथा कथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहा जाता है, जिनका आधार विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।[6] एक विचारक के अनुसार– The People that live is more primitive conditions outside the sphere of sophisticated instances.[7] डॉ० श्याम परमार के अनुसार–लोक साधारण जन समाज है जिसमें भू–भाग पर क्रमशः फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित है यह शब्द वर्ग भेद रहित व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि समेत अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्याण में विकास का द्योतक है। कुछ विद्वानों ने लोक शब्द को जनशब्द के अर्थ में प्रयुक्त करते हुए उसका पर्यायवाची माना है। लोक की विवेचना के बाद संस्कृति पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। सम् उपसर्ग पूर्व 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर संस्कृति शब्द बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ परिष्कार, तैयारी, पूर्णता तथा मनोविकास है।[8] हिन्दी शब्दकोष के अनुसार इसका अर्थ परिष्कार सुधार संस्कार शुद्धि, सजावट, सभ्यता तथा चौबीस वर्गों के वृत्तों की संज्ञा आदि है।[9] संस्कृति कोष के अनुसार संस्कृति उन गुणों के समुदाय है जो व्यक्तित्व को समूह और परिष्कृत बनाते हैं। चिन्तन और कलात्मक वे क्रियाएं सर्जन संस्कृति के अन्तर्गत आती है, जो मानव जीवन के लिए प्रत्यक्ष में उपयोगी न होने पर भी उसे समृद्ध करती है।[10] इस तरह संस्कृति संपूर्ण सीखे हुए व्यवहार या उस व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होती है। इस प्रकार संस्कृति को सामाजिक प्रथा या कस्टम या रिवाज कहा गया है। विभिन्न शास्त्रों, दर्शनों आदि में होने वाले चिन्तन साहित्य चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधन आदि में नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को संस्कृति कहा गया है।

संस्कृति से तात्पर्य समूह के सभी विशेष मानव मूल्यों से है। सिर्फ भाषा, कला, विज्ञान, कानून, नीति, राज्य, धर्म आदि नहीं अपितु इसमें इमारते, औजार यन्त्र, यातायात, योजनाएँ भी सम्मिलित है, जिसमें आध्यात्मिक एक सांस्कृतिक विशेषताओं का व्यावहारिक प्रभावशाली रूप प्राप्त हुआ है। इसके अन्तर्गत भाषा, नियम, परम्परा रीति, रिवाज संस्थाएँ आदि निहित है। यह मानव समाज की सर्वांगीण विशेषताएँ हैं।[11] लोक

और संस्कृति के संक्षिप्त विवेचन के बाद मिथिलांचल की लोक संस्कृति पर विचार किया जा सकता है।

मिथिलांचल की लोक संस्कृति सृष्टिकाल से ही अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। इसका गहरा संबंध परम्परा से रहा है इसका ही यह विकसित रूप है। भारतीय लोकसंस्कृति की आत्मा जनसाधारण है, जो नगरों से दूर गाँवों एवं वन पर्वतों में बसती हैं। 'आत्मोपम्येन सर्वत्र' यही हमारी लोकसंस्कृति का सिद्धांत है। इसी का पालन कर यहाँ के ऋषि–मुनियों से लेकर जनसाधारण तक ब्रह्मतत्व और माया के मर्म को समझ सके हैं। यहाँ की ग्राम्य संस्कृति का मूलाधार जिन्हें आजकल अनपढ़, गंवार, वनचर आदि संज्ञा से विभूषित किया जाता है वही इस संस्कृति के जीवंत प्रहरी है। जब यहाँ की लोक संस्कृति की आत्मा साधारण जनता का दर्शन करेंगे तो ग्रामों, गिरि कन्दराओं में निवास करती हुई इस संस्कृति की रक्षा कर सकेंगे।

लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पलती और पनपती है। इसमें श्रद्धा भावना की परम्परा निश्चित है, वह अन्तः सलिला सरस्वती की तरह जनजीवन में हमेशा प्रवाहित होती है। वस्तुतः लोक एवं लोकेत्तर संस्कृति तथा विश्व की सभी संस्कृतियों का बीज एक ही है। लोक संस्कृति की व्यापकता का ही मानवीय प्रक्षेत्र है। इसके उदगम और परिव्याप्ति पर विचार करते हुए चिन्तकों का मानना है कि सामान्य जनता में प्रचलित आस्था, विश्वास, परम्पराएँ एवं रीति–रिवाज समाज की वास्तविक संस्कृति का निर्माण करते हैं। इन्हें सीखने के लिए किसी विश्वविद्यालय की शरण नहीं लेनी पड़ती है बल्कि व्यक्ति अपने पूर्वजों के मुख से सुनकर एक विस्तृत समाज में लोगों को वैसा करते देखकर, संस्कृति को ग्रहण करता है।[12]

प्रख्यात अंग्रेज विद्वान सरजॉन हॉस्टन ने बिहार को ''भारत का हृदय'' कहा है। इस भारत का हृदय और बिहार की आत्मा वहाँ की ग्राम या लोक संस्कृति है, जिसमें भारतीय संस्कृति के परिष्करण में उल्लेखनीय योगदान किया है। बिहार में भाषा आदि के भेद से वहाँ की प्राप्य संस्कृति की एकता में अनेकता है जो आगन्तुकों को बरबस मन

मोह लेता है। मैथिली मगही, भोजपुरी, अंबिका, नगपुरिया, कुरमाकी आदि वहाँ की बोलियों ने अपनी विभिन्नताओं के साथ अपने–अपने परिवेश में अपनी–अपनी मनोरम संस्कृतियों की सर्जना की है, और उसमें अनेक स्तरों पर एक मनोरंजक समानता देखने को मिलता है।

बिहार की समतल इलाकों में सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न क्षेत्र मिथिला है। ऐतिहासिक प्राचीनता के साथ–साथ सांस्कृतिक संपन्नता की दृष्टि सें मिथिला के बाद मगही भाषा क्षेत्र 'मगह' है, किन्तु अपनी आसुरी और अवैदिक भावनाओं के कारण इस भूमि पर भोजपुरी संस्कृति हावी रही है। दूसरी तरफ मिथिला जहाँ जगज्जननी सीता का अवतरण हुआ, वहाँ न्याय और सांख्य के प्रवर्तक गौतम, कपिल, कणाद, जैमिनी आदि अवतरित हुए तथा जहाँ मैथिल कवि विद्यापति ने लोकभाषा मैथिली में रचित अपनी कोमलकान्त पदावली को यहाँ की लोकसंस्कृति को सजाने–सँवारने का भरसक प्रयास किया।

स्रोत एवं संदर्भ :–

1. मार्गव आदर्श, हिन्दी शब्दकोष–संपा०प्रो० रामचन्द्रपाठक, भार्गव बुक डिपो चौक, वाराणसी वर्ष, 1980, पृ० 21
2. वामन शिवराम आप्टे–संस्कृत हिन्दी शब्दकोष–नाम प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली–7 वर्ष 1996, पृ० 885
3. डॉ० हरद्वारी लाल बाहरी–प्राचीन भारतीय संस्कृति कोष के अनुसार
4. सिद्वान्त कौमुदी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई वर्ष 1989, पृ० 417
5. हिन्दी विश्वकोष–भाग संपादक नागेन्द्र नाथ वसु पृ० 357
6. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय–लोकसाहित्य की भूमिका साहित्य भवन प्रा०लि० इलाहाबाद 03 वर्ष 1996, पृ० 28
7. डॉ. कुंज बिहारी प्रसाद – स्टडी ऑफ ऑरिजिनल फोकलोर के अनुसार।
8. संस्कृत–हिन्दी कोष उपर्युक्त, पृ० 1348
9. भार्गव आदर्श हिन्दी कोष – उपर्युक्त पृ० 760
10. लीलाधर शर्मा पर्वतीय–भारतीय संस्कृति कोष–वर्ष 1225 पृ० 929
11. हिन्दी साहित्य कोष–भाग 1 पृ० 712–13 वर्ष 2000
12. मानविकी पारिभाषिक कोष, मनोविज्ञान खण्ड पृ० 80–81 वर्ष 1998ह